राजनीतिज्ञ व लोकसेवकों के संबंधः 21वीं सदी के परिप्रेक्ष्य में

*डॉ. ओम प्रकाश मीणा
**डॉ. माली राम नेहरा

शोध सारांश

प्रस्तुत पत्र में संदर्भ विश्लेषणात्मक विधि के माध्यम से वर्तमान सदी को केन्द्र में रख कर राजनीतिज्ञों व लोक सेवकों के संबंधों की पड़ताल करने का एक सार्थक प्रयास किया गया है। अपने सार के भार में यह शोध पत्र इन तथ्य को पुष्ट करता है कि राजनैतिक व प्रशासनिक बदलाव के इस युग में राजनीतिज्ञों व लोक सेवकों के संबंध में आदर्श अन्योयाश्रित स्वरूप में न रह कर द्वन्द्वात्मक व जटिल स्वरूप में हो गये है, साथ ही प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा महत्ती आवश्यकता खड़ी की गयी है कि यह दोनों पक्ष, जो एक दूसरे के पूरक है, लेकिन अलगाव के लिहाज से उपयुक्त समन्वय का पर्यावरण की प्रबल आवश्यकता है और तंत्र के इसी मंत्र में लोकतंत्र की सफलता निहित्त है।

संकेताक्षर – राजनीतिज्ञ, लोकसेवक, 21वीं सदी

आधुनिक लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में नागरिकों को सुशासन प्रदान करने का उददे्श्य रखा जाता है। मानव को गरिमामय जीवन प्रदान करने के लिए मानवाधिकारों की प्रस्थापना, कल्याणकारी कार्य, कानून एवं व्यवस्था का जन उन्मुख होना आदि मानववादी दृष्टिकोणों को लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनाया जाता है। इन कार्य योजनाओं की नीति निर्माण एवं नीति क्रियान्वयन का जिम्मा राजनीतिज्ञाों एवं लोकसेवकों दोनों का है।

संसदात्मक प्रजातन्त्र में राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों के संबंध अन्योन्याश्रित रहते है। इन दोनों के घनिष्ठ संबंधों पर ही शासन व्यवस्था की सफलता निर्भर करती है । राजनीतिज्ञों द्वारा निर्मित प्रशासनिक नीतियों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व लोक सेवकों पर रहता है। लोक सेवकों का कार्य नीति क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है वरन वह मंत्रियों को सलाह एवं परामर्श भी देते है। ज्ञान की विशिष्टता होती है । प्रेस्थस के अनुसार ''लोकतंत्र में नौकरशाही निर्वाचित व्यवस्थाओं के निर्देशन में कार्य करती है जिसके लिए कि मुख्य कार्यकारी प्रमुख रूप से विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है, परन्तु नीति–निर्माण के विशिष्ट कार्य में लोक सेवक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।''

संसदीय शासन प्रणाली की सफलता तथा प्रशासन का कुशलतापूर्वक संचाल राजनीतिज्ञ लोक सेवक संबंधों के संतुलित स्वरूप पर निर्भर है। वर्तमान समय में शासन व्यवस्था में कोई भी समस्या इतनी अधिक जटिल एवं विचारणीय नहीं है जितनी राजनीतिज्ञाों एवं लोक सेवकों के मध्य संबंधों की समस्या है। अतः इन दोनों के संबंधों का ऐतिहासिक रूप से क्रमिक विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है। वर्तमान समय में राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों के संबंध संसदीय एवं संवैधानिक मर्यादाओं के अनुकूल नहीं है। लोक सेवकों का राजनीतिकरण हो रहा है, राजनीति में अपराध बढ़ रहा है। जो लोक सेवकों की तटस्था पर आक्रमण कर रहा है। आज राजनीतिज्ञ, लोक सेवक, अपराधी एवं व्यापारियों का अस्वस्थ गठबंधन स्थापित हो गया है, जो प्रशासनिक माध्यम से स्वयं के हित साधते है। जिससे सुप्रशासन पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों की समस्याओं जाने से पहले हमें इन के संबंधों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना अतिआवश्यक हो जाता है। अब्राच, पुटनान एवं रॉक मैन ने पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों में राजनीतिज्ञ एवं लोक सेवकों के संबंधों को चार प्रतिरूपों में विभाजित किया गया है।

प्रतिरूप प्रथम (उन्नीसवीं सदी का पूर्वाद्ध) –

राजनैतिक और प्रशासन दोनों अलग–अलग है। क्योंकि राजनीति राज्य –इच्छा को प्रतिपादित करती है तो प्रशासन का संबंध इस इच्छा को क्रियान्वित करने से है। स्पष्ट रूप से राजनैतिक–प्रशासन द्विविभाजन था।

प्रतिरूप द्वितीय (बीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध) –

नीति निर्माण में राजनीतिज्ञ एवं लोक सेवक अलग–अलग रूप से सहभागी होते थे। अधिकारी तंत्र तटस्थ विशेषशता प्रदान करता है एवं राज नेता क्षेत्रानुकूल नीति बनाते है। साथ ही लोक सेवक नीति को क्रियान्वित करता है।

प्रतिरूप तृतीय (1950 के बाद का काल) –

लोक सेवक एवं राजनेता दोनों राजनीति से संबंध रखने लगे। लोक सेवकों की राजनीति में भूमिका बढ़ने लगी पर राजनैतिक कुशलता में दोनों में समानता नहीं थी। इसलिए लोक सेवक व राजनेता दोनों एक दूसरे के पूरक है ।

प्रतिरूप चतुर्थ (20वीं सदी के आखिरी 35 साल) –

इसे विशुद्व रूप से संकरित प्रकार सामने आया। राजनेताओं एवं अधिकारियों के कार्यो में अतिराव देखने को मिला। इनकी भूमिको अलग से पहचानना मुश्किल हो गया।

भारत के परिप्रेक्ष्य में हम देखते है कि भारतीय सिविल सेवा के रूप में हमे तटस्थ अधिकारी तंत्र विरासत में मिला। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात हमें अधिकारी तंत्र की भूमिका को राष्ट्र निर्माण के उपर्युक्त बनाना आवश्यक था। बदलते राजनैतिक मूल्यों एवं सामाजिक परिवेश के कारण लोक सेवाओं में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। लोक सेवकों को समाज के दलित एवं निर्धन वर्ग का समर्थन करना चाहिए और इन वर्गो का उत्थान करना भी प्रथम प्राथमिकता है।

जवाहर लाल नेहरू काल (1947–1964) –

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय लोक सेवाओं को लोकतंत्र, विकास एवं विक्रेन्द्रीकरण के संदर्भ में कार्य करना था। राजनीतिज्ञों वं लोक सेवकों के मध्य विभिन्न स्तरों पर अन्तक्रिया होना स्वाभाविक था यह लोक सेवाओं के लिए नयी बात थी।

अब सामयिक चुनावों, राजनैतिक दलों का प्रादुर्भाव एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों का शासन का केन्द्र बिन्दु बनना एवं राजनैतिक शासन के लिए उत्तरदायी होना भारतीय लोक सेवकों के लिए नई बात थी। यह वह समय था, जब राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों में दिशा परिवर्तन अभिप्रेरणा एवं व्यवहार प्रारूप में बदलाव लाना था। सौभाग्य से यह मुश्किल कार्य नहीं रहा क्योंकि राजनीतिज्ञों ने जनसामान्य के लिए सेवा प्रदान करने के लिए कर्मठता, बुद्विमता एवं निष्ठा का परिचय दिया। जहाँ तक भारतीय सिविल सेवा की परम्परा जारी रही पर इसमें कोई आशंका नहीं पर उन्होंने भी अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन किया। कार्य केप्रति उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ, निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र मस्तिष्क से कार्य करने लगे। कार्य संचालन में वस्तुनिष्ठता, तटस्थता थी। लोक सेवकों ने एक सज्जन राजनेता की तरह कार्य किया। विकास प्रशासन की माँगों एवं चुनौतियों का स्वागत किया। समस्याओं का मुकाबला कर अपनी योग्यता सिद्व की। इन लोक सेवकों ने सहयोग की वास्तविक भावना प्रदर्शित की । इनके दृष्टिकोण में एक रूपता एवं समरसता थी। राष्ट्रीय संदर्भ में पैतृक प्रशासन था । यह इसलिए संभव हो सका क्योंकि राजनीतिज्ञ एवं लोक सेवक दोनों उच्च मध्यम वर्ग प्रणाली पृष्ठभूमि से थे। जो एक जैसे एक ही सांस्कृतिक एवं समान मूल्यों वाले

वातावरण में बड़े हुए। इसलिए पहले वाली ढृढता त्यागने में ज्यादा समस्या का सामना नहीं करना पड़ा एवं जनता के विकास के लिए सौहार्द पूर्ण वातावरण स्थापित किया।

विकास एवं जनसहभागिता के कारण भूमिका में परिवर्तन –

विकास कार्यो के क्रियान्वयन में सेवकों को जनता के साथ कार्य करना पड़ा एवं उनकी सहभागिता के लिए प्रयास किया। नेहरू जी ने 1954 में भारतीय लोक प्रशासन संस्थान के उद्घाटन सम्मेलन में कहा था, कि पं. जवाहर लाल नेहरू के अनुसार प्रशासन कुछ प्राप्त करने के लिए होता है न कि यथार्थ जीवन की समस्याओं से परे एक आइवरी टावर में विराजमान होने के लिए जहॉ केवल प्रक्रियागत नियमों का पालन किया जाता है ना कि ग्रीक कथाओं के अनुसार युवा किरदार आत्ममुग्ध की भाँति स्वयं को पूर्ण संतुष्टि के साथ देखने के लिए अंनत कसौटी तो मनुष्य व उसका कल्याण है। लोक सेवक भी राजनीतिज्ञों के समान ही जनता की नजरों में होते है। पर यह तटस्था को प्रभावित नहीं करते है।यह सर्वमान्य धारणा कि लोक सेवाओं का राजनीतिकरण नहीं होना चाहिए। सरदार पटेल ने कहा था कि लोक सेवा दलगत राजनीति से ऊपर होनी आवश्यक है और हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए की लोक सेवकों की भर्ती, अनुशासन व निर्णय में राजनीति हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए। यदि इसे पूरी तरह समाप्त ना भी किया जा सके।

राजनैतिक व प्रशासनिक परिदृश्य में बदलाव –

समय के साथ राजनैतिक–प्रशासनिक संबधों में धीरे पर वास्तविक परिवर्तन आने लगा। लोक सेवक राजनीतिज्ञों के आज्ञाकारी औजार बनने लगे। अब यह परम्परा विकसित होने लगी कि सचिव ऐसी दे जो मंत्री निर्णय करना चाहता है उसके अनुकूल हो। मंत्री ऐसे अधिकारियों को पसन्द करने लगे तो श्रीमान कहते एवं मंत्री की कार्य प्रक्रिया का समर्थन करे एवं कठिन प्रश्न पूछे। ऐसा नहीं है कि सभी मंत्री ऐसा करते थे कुछ राजनीतिज्ञ जे.बी.पंत एवं लाल बहादुर शास्त्री को अपने सचिवों में पूर्ण विश्वास था।

बदलते परिवेश में अधिकारियों में असुरक्षा की भावना उत्पन्न होने लगी और वे स्वयं के बारे में सोचने लगे जिससे ''टीम भावना'' समाप्त हो गयी। नयी शासन व्यवस्था से लोक सेवक सम्मेलनों एवं कमेटियों में व्यस्त हो गये। परिणामस्वरूप वे कार्य क्षेत्रों का दौरा नहीं कर पाते जिससे कार्य स्थल पर अधिकारियों की पकड कमजोर होती गई। राजनैतिज्ञों की कार्यक्षेत्र पर पकड़ दृष्टि अधिक होती है। जो अधिकारी राजनीतिज्ञों की इच्छानुसार कार्य नहीं करता उसें वह परेशान करते है। परिणामस्वरूप तटस्था का सिद्वान्त संकट में फंस गया है। प्रशासनिक आयोग ने पाया कि मंत्रियों में निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र सुझावों का स्वागत करने में कमी हुई है। साथ ही लोक सेवक राजनीतिज्ञों से संबंधता रखने लगें है। परिणामस्वरूप लोक सेवकों का राजनीतिकरण हो रहा है।

जवाहर लाल नेहरू के काल में भी राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों के अमार्यादित विवाद सामने आये जैसे मंत्री टी.टी. कृष्णाचारी–एच.एम.पटेल एवं मंत्री श्री रमेश चन्द्र मीणा–भगवती प्रसाद का विवाद प्रसिद्व है।

इंदिरा गांधी का काल (1966–1984) – 1960 के दशक में व्यापारियों का राजनेताओं के साथ गठबंधन ने अधिकारियों पर दबाब बढ़ाने लगे कि लोक सेवकों उनके हितों का ध्यान रखें। इस आर्थिक कारक ने राजनैतिक विकास का बढ़ाया जिससे तटस्था के सदंर्भ में वास्तविक एवं सैद्वान्तिक रूप में अंतर देखा जाने लगा।

प्रतिबद्वता पर जोर

इंदिरा गांधी ने लोक सेवकों की तटस्था को गैर–निष्पादन एवं अयोग्यता के लिए उत्तरदायी माना एवं तटस्था को विकास के मार्ग में बाधा माना। इंदिरा गांधी का मानना था कि अधिकारी तंत्र को शासन करने वाली पार्टी के

विचारधारा एवं नीतियों के प्रति प्रतिबद्वता होना चाहिए। इस प्रकार लोक सेवा में राजनीति अपना स्थान बनाने लगी। अब राजनेता एवं लोक सेवक अलग–अलग सामाजिक पृष्ठभूमियों से आने लगे। परिणामस्वरूप कार्यो में एकरूपता में कमी, लाइसेंस एवं कोटा राज ने दोनों मध्य मतभेद पैदा करना शुरू कर दिये। मंत्री सचिवों के कार्यो में हस्तक्षेप करने लगे एवं शासक की इच्छा ही कानून है प्रतिबद्वता विचारधारा को अपनाने लगे। इस प्रकार कानून शासन की अवहेलना होने लगी।

मंत्री जो अपनी स्थानान्तरण, पदोन्नति में देरी के माध्यम से लोक सेवको पर काबिज होने लगे। परिणामस्वरूप राजनीतिज्ञ एवं भ्रष्ट लोक सेवक गठबंधन बनाने लगे। साथ ही असामाजिक समूहों से संबंधता स्थापित करने लगे। राजनीति का अपराधीकरण होने लगा। परिणामतः प्रशासन का राजनीतिकरण।

इंदिरा गांधी के काल के बाद क्षेत्रीयवाद,आतंकवाद, साम्प्रदायिकता एवं जातिवाद हावी होने लगा। साथ–साथ ही आर्थिक अपराधों का बोलबाला बढ़ने लगा। राजनेताओं के स्तर में गिरावट आने लगी। लोक सेवक स्वयं के हित के लिए राजनेताओं से गठबंधन स्थापित करने लगे।

राजीव गांधी का काल (1984–1989)–

राजीव गांधी ने 1984 प्रतिबद्वता पर जोर दिया एवं उस काल की लोक सेवा के लिए अरूण शर्मा ने लिखा कि ''लोक सेवक अब एक संरक्षक से एक दरबारी के रूप में परिवर्तित हो गया है जिसमें वैधता एवं परामर्श का कौशल है।'' साथ ही पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एम. शेषन का लोक सेवकों के बारे में यह कथन विचारणीय है कि ष्प्अपस ेमतअमदज – थ्नदबजपवदपदह े चवसपजपबंसस हपतसे ीव बवदजपदनवनेसल चतेजपजनजम जीमपत चवेपजपवदण

नरेन्द्र मोदी का काल (2014 – वर्तमान)

लोक सेवकों को सत्ता परिवर्तन के साथ स्थानान्तरण होने लगा। यह पहले 1977 में जनता पार्टी शासन ने शुरू की जो आगे भी चलती रही एवं राज्य सरकारों एवं पंचायतों ने भी इस हथियार के रूप में काम लेना शुरू कर दिया एवं लोक सेवकों को परेशान करने के लिए काफी दुरूपयोग हुआ। साथ केन्द्रीय जाँच ऐजन्सियों को लोक सेवकों की निगरानी करने की परम्परा भी एक आम बात हो गयी है और जॉच एजेन्सियों का हस्तक्षेप बढा है। जिसमें लोकसेवकों का मनोबल गिरा है।

इस प्रकार राजनीति के अचानक हस्तक्षेप ने लोकसेवकों के मनोबल को कमजोर किया, नैतिकता एवं अनुशासन में गिरावट आयी। अधिनस्थ अधिकारी उच्च अधिकारियों की अवहेलना कर सीधे उच्च अधिकारियों से संबंध स्थापित करने लगे। राजनीतिकरण अहितकर है पर राजनीतिज्ञ एवं लोकसेवक दोनों इसमें लिप्त हो गये। राजनीतिज्ञ अपने हित के लिए लोकसेवकों का उपयोग करते है वही लोकसेवक पदोन्नति एवं इच्छित स्थानान्तरण प्राप्त कर व्यक्तिगत लाभ अर्जित करते है।

भारतीय लोकतंत्र बाहुबल एवं धनराशि, अनुशासनहीनता, हिसां वं भ्रष्टचार से ग्रसित है।

राजनीतिज्ञ एवं लोकसेवकों के संबंधों में मतभेद के कारण :–

1. मंत्रियों और सचिवों के बीच बार–बार विभाग परिवर्तन के कारण मधुर संबंध नहीं होना।
2. मंत्री प्रायः अपने अधिकारियों की सलाह को पसन्द नहीं करते है। बल्कि उन्हें वे लोक सेवकों द्वारा खड़ी की गई अड़चनों के रूप में देखते है।

3. कुछ अधिकारियों में व्यक्तिगत मंत्रियों और नीतियों की निजी तौर पर या सामाजिक मंचों में आलोचना करने के आदत जिसे मंत्री बर्दाशत नहीं करते है।
4. मंत्री और सचिव दोनों को अपनी–अपनी भूमिका की सही जानकारी नहीं होती है।
5. मंत्रियों में नेताओ, विधायकों और अन्य लोगो के मन में यह धारण विकसित करने की प्रवृति होती है कि वे (मंत्री) कोई विशेष कार्य करना चाहेते है लेकिन विभाग के अधिकारियों के असहयोग के कारण वे असहाय हो जाते है।

लोकसेवकों में नैतिक पतन के कारण :–

1. राजनीतिज्ञ और व्यक्तिगत कारणों से कुशल अधिकारियों का उत्पीड़न।
2. पसंदीदा अधिकारियों को विशेष पद और वेतन
3. भ्रष्ट अधिकारियों को संरक्षण ताकि वे राजनीतिक कृपा या प्रभाव का लाभ उठाते रहे।
4. अधिकारियों की मौलिक आवश्यकताओं जैसे आवास, वेतन वृद्वि तथा मनोरंजन साधनों के प्रति उदासीनता
5. अहितकर सेवा शर्ते, जैसे अपर्याप्त स्थान, बार–बार तथा असंगत रूप से किये गए स्थानान्तरण आदि।

इस प्रकार कभी–कभी लोक सेवक राजनीतिक दवाब में झुक जाते है एवं अपने मंत्री को सन्तुष्ट करने के लिए गैर कानूनी कार्य करते है। इसी क्रम में टी.एन.शेषन ने कहा है कि ''राजनेताओं का नैतिक दृष्टि से मुकाबला कर सकने वाले अधिकारियों की संख्या बड़ी तेजी से कम होती जा रही है क्योकि हर एक व्यक्ति आज अपने स्वार्थ को पूरा करने में लगा हुआ है। आज किसी राजनेता का सिद्वान्तों के आधार पर मुकाबला करने वाला अधिकारी विक्षिप्त ही माना जायेगा''।

लोक सेवक सक्रियता :–

राजनीतिज्ञों एवं लोक सेवकों के गठबंधनों एवं अधिकारियों के साथ संबंधता के बावजूद सौभाग्य से ऐसे लोकसेवक भी है जिनमें तटस्था एवं संविधान के प्रति प्रतिबद्वता मौजूद है । जिनमें ए.के. चटर्जी जो पटना में थे 1992 में स्वेच्छा से सेवानिवृति ले ली एवं लालची एवं भ्रष्ट राजनीतिज्ञों एवं स्वार्थी लोकसेवकों के गठबंधन का खुलासा किया। कुछ लोकसेवकों ने गलत निर्णयों के विरूद्व साहस से जनता के सम्मुख गये है। जैसे मुम्बई में जी.आर. खेरनार ने गलत निर्णयों को अस्वीकार कर दिया और कहा कि ''मैं एक लोक सेवक हूँ मेरा कर्तव्य है जनता की सेवा करना, मैने बहुत भ्रष्टाचार देखा है मेरे पास छत पर खड़े होकर चिल्लाने के अलावा कोई विकल्प नहीं है''। इस प्रकार कई लोकसेवक है जो भ्रष्टाचार एवं अपवित्र गठबंधन का विरोध करते है एवं लोक सेवकों की गरिमा बढ़ाते है। राजनीतिज्ञों के गलत कार्यो का विरोध करते है। इसके लिए कई बार उन्होंने सेवा नियमों का भी उल्लघंन किया है।

नानीपालकीवाला ने कहा कि ष खेमनार ने सही चीजों को गलत तरीके से किया है। ईश्वर ना करे कि वह गलत चीजों को सही तरीके से करना सीख ले जैसा की हमारे चतुर व निशंक राजनेता करते है ष ।

राजनीतिज्ञों द्वारा शक्तियों का दुरूपयोग रोकने एवं गैर जिम्मेदाराना व्यवहार रोकने के लिए प्रशासनिक सक्रियता आवश्यक है।

यहाँ यह बताना उचित होगा कि सिविल सेवा पर राजनीतिक दवाब कोई चिंता की बात नहीं है बल्कि इसके अच्छे नतीजे भी सामने आ सकते है बशर्ते प्रशासन पर कार्यकुशलता बढ़ाने और बेहतर प्रशासन के लिए और जोर पड़े दुर्भाग्य से मुख्य समस्या यह है कि देश की राजनीति ही लोक कल्याण से दूर हट रही है। वरिष्ठ सिविल सेवा अधिकारी अपनी सलाह निःसंकोच होकर नहीं दे पाते।

मंत्री–लोक सेवक संबंधों के इन मामलों से स्पष्ट होता है कि कुछ मामलों में सचिवों ने अपनी भूमिका सही ढंग से नहीं निभायी जैसे एच.एम. पटेल व एल.पी. सिंह के मामले तथा कुछ मामलों में मंत्री विशेष ने अनावश्यक हस्तक्षेप किया जैस के, हनुमन्तैया की शैली से प्रकट होता है।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि मंत्री लोक सेवक का संबंध अत्यन्त घनिष्ठ व महत्वपूर्ण होता है । जहाँ तक दोनों को केवल लोक हित के लिए काम करना है इनमें कटुता आने का कोई कारण नहीं है, पर जहाँ एक दूसरे के कन्धे पर रखकर अपना निशाना साधने का स्वार्थ पैदा हो जाता है वहीं पर परस्पर सन्देह व चालबाजी का माहौल पैदा हो जाता है जो सरकारी कार्यो की प्रगति के लिए रूकावट पैदा करता है। सामाजिक व व्यक्तिगत पृष्ठभूमि समान्तर न होते हुए भी मामूली शिष्टता के सहारे दोनो एक दूसरे के पूरक और सहायक बन सकते है।

राजनीतिज्ञ एवं लोक सेवक के संबंधों में सुधार के सुझाव :–

- सचिव का मंत्री के प्रति संबंध निष्ठा का होना चाहिए तथा मंत्री का सचिव के प्रति विश्वास का होना चाहिए
- मंत्री को चाहिए कि गंभीर मामलों या कुशासन के मामले को छोडकर दिन–प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप न करे।
- मंत्रियों को वरिष्ठ अधिकारियों के मध्य निडरता तथा न्याय का वातावरण विकसित करना चाहिए तथा उन्हें स्पष्ट और निष्पक्ष सलाह एवं परामर्श देने के लिए उत्साहित करना चाहिए।
- सचिवों तथा अन्य लोक सेवकों के लिए आवश्यक है कि वे मंत्रियों की कठिनाईयों को अच्छी तरह से समझे तथा उनके प्रति अधिक जागरूकता दिखावें।
- विशेषतः जहाँ सरकार की नीति स्पष्ट न हो या मंत्री किसी महत्वपूर्ण माामले में सचिव असहमत हो, ऐसे सभी महत्वपूर्ण निर्णयों के कारण सहित संक्षेप में लिखा होना चाहिए।
- प्रधानमंत्री को चाहिए कि वह मंत्री और सचिव विशेष के मध्य अस्वस्थ व्यक्तिगत लगाव के विकास को रोकने का प्रयास करें।
- मंत्री का यह विशेषाधिकार है कि नीति–निर्धारण तथा प्रशासन के मामले में उसका निर्णय अंतिम होता है, परन्तु व्यवहार में उसें नीति–निर्धारण सचिव के सम्पर्क, परामर्श एवं सहयोग से करना चाहिए तथा प्रशासन का काम सामान्यतः सचिव को सौप देना चाहिए।
- मंत्री द्वारा अपनी निर्धारित नीतियों तथा दिए गए आदेशों के विरूद्व कार्य करने वाले लोक सेवक के विरूद्व प्रभावशाली कार्यवाही की जानी चाहिए। ऐसा न किए जाने पर मंत्री को तुरन्त त्याग–पत्र दे देना चाहिए।
- लोक सेवकों एवं राजनीतिज्ञों को अस्वस्थ गठबंधन बनाने से परहेज करना चाहिए।
- मंत्री लोकतंत्र के माध्यम है। उन्हें लोक सेवकों द्वारा दिए हुए परामर्श को ध्यान में रखते हुए विकास के कार्य करने चाहिए।

निष्कर्ष

राजनीतिज्ञों तथा लोक सेवकों के मध्य उत्पन्न होने वाले मतभेद केन्द्र,राज्य तथा जिला स्तरों पर प्रकाश में आते रहे है। मंत्रियों तथा लोक सेवकों के बीच मतभेद एक ऐसे समाज के अन्तर्गत और तीव्र हो जाते है जहॉ कि मूल आधारों व सिद्वान्तों के विषय में ही परस्पर सहमति नहीं पाई जाती है। तीव्र सामाजिक मतभेद की स्थिति में, जहॉ कि लोगों के विचारों में मौलिक अन्तर पाया जाता है, राजनीतिज्ञों व लोक सेवकों के बीच मधुर तथा सरल कार्यकारी संबंध स्थापित होना सदा ही संभव नहीं होता । यदि राजनैतिक नेताओं तथा नौकरशाही के उच्च सोपान के अधिकारियों के राजनैतिक विश्वास तथा लक्ष्य समान हो, तो दोनो के बीच टकराव के अनेक क्षेत्र स्वयं ही समाप्त हो जाते है।

आजादी के बाद भारत में राजनीतिज्ञ–लोक सेवक संबंध में जो जटिलता आई है उसके अनेक कारण । प्रशासन का भीमकाय विस्तार मंत्रियों की दुर्बल स्थिति प्रशासन का केन्द्रीय स्वरूप आदि कुछ ऐसी बाते है, जिन्होंने राजनीतिज्ञ–लोक सेवक संबंधों में कुछ उलझनों से उबरने के लिए जो मार्ग दिखलायी देता है वह केवल यही है कि राजनीतिज्ञ–लोक सेवक संबंधों में समन्वय एवं सहयोग स्थापित किया जाय। राजनीतज्ञों के क्रियाकलापों पर लोक सेवकों का प्र्याप्त प्रभाव पड़ता है और सेवकों का सहयोग प्रशासन को सुगमतापूर्वक चलाने के लिए वांछनीय है। राजनीतिज्ञों से यह आशा की जाती है कि ''प्रथम (अर्थात राजनीतिज्ञ) प्रशासन में लोकतन्त्रीय तत्व की तथाय द्वितीय (अर्थात लोक सेवक)कर्मचारी तन्त के तत्व की व्यवस्था करता है। दोनों की आवश्यक है एक सरकार को लोकप्रिय बनाने और दूसरा उसे कार्यकुशल बनाने के लिए। एक सुन्दर प्रशासन की परख यही है कि लोकतंत्र और कार्यक्षमता का सफल संयोजन हो जाए। एस.एस.खेरा ने लिखा है कि ''अधिकारियों से यह आशा की जाती है कि वे अपना कर्तव्य निर्वाह भय व पक्षपात रहित होकर करेगें। उनके लिए प्रशासन का पहला सिद्वान्त यही है''। वे अपने पद पर सुरक्षित है किसी की इच्छा पर उन्हें सेवाओं से पृथक नहीं किया जा सकता। उनकी सेवा शर्ते, वेतन भते तत्संबंधित अन्य लाभ शासन द्वारा पूर्ण रूप से सुरक्षित है।

***सह आचार्य, लोक प्रशासन**
****सह आचार्य**
आयुक्तालय कॉलेज शिक्षा
जयपुर (राज.)

संदर्भ ग्रंथ

1. फडिया, बी.एल. एवं फडिया कुलदीप, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा 2003 पृ.सं. 384
2. इन्द्र भूषण सिंह, लोक प्रशासन, एम एन एम प्रकाशन नई दिल्ली 1993 पृ.सं. 41
3. सचदेवा एवं गुप्ता लोक प्रशासन अजन्तम प्रकाशन, दिल्ली 1984 पृ.सं. 154
4. द टापर्स इण्डिया दिल्ली जून 1995 अंक 5 पृ.सं. 94
5. परीक्षा मंथन निबन्ध वार्षिकी भाग–2 एकेडमी प्रेस, इलाहाबाद 2000 पृ.सं. 33